Shodhbodhalaya: An International Peer reviewed Multidisciplinary Journal

Volume 1 | Issue 1 | ISSN: 2584-1807 | (https://shodhbodh.com/)

भारतीय साहित्य में नारीः आदिकाल से आधुनिक काल तक का यात्रा–वृत्तांत

[1]संगीता सिंह, [2]डॉ. संतोष कुमार सिंह

[1]शोधार्थी, [2]पर्यवेक्षक

[1–2]विभागः हिन्दी, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, (सारण), बिहार

सार

भारतीय साहित्य में नारी का चित्रण आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक विभिन्न रूपों में किया गया है। प्रारंभ में नारी को देवी या शक्ति के रूप में पूजनीय माना गया, जबकि भक्तिकाल में उसे माया और पतन का कारण कहा गया। रीतिकाल में वह केवल श्रृंगार और भोग की वस्तु बनी रही, लेकिन आधुनिक काल में नारी के अधिकारों, स्वतंत्रता, शिक्षा और आत्मनिर्भरता पर विमर्श होने लगे। साहित्य में नारी का स्थान समाज में उसकी स्थिति को दर्शाता है, और यह स्पष्ट होता है कि समय के साथ नारी की भूमिका और अधिकारों को लेकर सोच विकसित हुई है। भारतेन्दु युग से लेकर आधुनिक हिंदी साहित्य तक, नारी को केवल भावनात्मक या भोग्य वस्तु के रूप में नहीं, बल्कि एक विचारशील और स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार किया गया है। इस परिवर्तन में सामाजिक सुधार आंदोलनों और साहित्यकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, जिन्होंने नारी की वास्तविक स्थिति और अधिकारों के लिए आवाज उठाई।

मुख्य शब्दः

भारतीय नारी, नारी अस्मिता, हिंदी साहित्य, आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल, स्त्री–विमर्श, सामाजिक परिवर्तन, नारी स्वतंत्रता।

भूमिका

भारतीय संस्कृति में आदिकाल से नारी हमारे समाज एवं साहित्य का केन्द्र बिन्दु बनी हुई हैं। इस समाज में नारी अस्मिता का प्रश्न अनादि काल से अनेक रूढ़ियों और परंपराओं या मर्यादा के अनुसरण में दबता आया है। आदिकाल में उसे देवी या शक्ति का रूप मानकर उसे सर्वोच्च आसन दिया गया एवं पूजा की गई तो भक्तिकाल में उसे माया कहा गया, रीतिकाल में उसे श्रृंगार और भोग की वस्तु बताई गई तो आधुनिक काल में उसे केन्द्र बिन्दु बनाकर उस पर विमर्श किये गये। समाज में अनेक लोगों ने इसके खिलाफ आवाजें उठाई एवं नारे लगाये एवं कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय आंदोलनों ने इस चेतना को जगाने के लिए प्रयत्न किये। सही रूप में नारी को भी समाज में पुरूष के समान एक विचारशील पात्र माना जाता है। वह भी अपनी निजी सोच एवं व्यवहार रखती है और उस सोच के अनुरूप समाज का निर्माण करना चाहती है। समय के प्रवाह के साथ परिस्थितियों में बदलाव आया और स्वयं नारी ने भी जागृत होकर अपनी आत्मवेदना को व्यक्त करने के लिए साहित्य जगत में प्रवेश किया।

किसी भी साहित्य का नारी चित्रण नारी के गुणों–अवगुणों से प्रभावित होता है और तभी वह समाज से साहित्य में भी वही स्थान प्राप्त करती है जो उसे समाज द्वारा प्रदान होता है। नारी अपने विशिष्ट गुणों के कारण ही आदिकाल से पूजी जाती रही है। नारी का चरित्र उसका विशेष गुण होता है जिसके बल पर उसे ऐसी अपूर्व महाशक्ति अर्जित होती है कि उसमें विद्यमान लज्जा, त्याग, शील, समर्पण, प्रेम, दया, करूणा, ममता, वात्सल्य आदि जैसे अनेक गुण उसको उत्थान व उन्नति के शिखर तक पहुँचाने के लिए स्वतः मुखरित हो उठते हैं।

विभिन्न कालों में नारी के कई रूप सामने आये। समय के साथ–साथ नारी के जीवन–स्तर में भी परिवर्तन आया।

चिरकाल से नारी सुकुमारता, कोमलता, विनम्रता, त्याग, समर्पण, कर्तव्यपरायणता की प्रतीक रही है। वैदिककाल में जहाँ नारी एक रत्न थी, वहाँ ब्राह्मण काल में नारी भारी अनर्थ की जड़ मानी गयी। उपनिषद काल, पौराणिक काल तथा महाकाव्य काल में नारी के 'पातिव्रत्य धर्म' का उल्लेख प्राप्त होता है।

हिन्दी साहित्य की ओर दृष्टि करें तो उसमें नारी के अनेकों रूपों का चित्रण हुआ है हिन्दी साहित्य का इतिहास चार कालों में विभाजित है जिसके अंतर्गत नारी के विभिन्न रूपों का विश्लेषण करेंगें–

आदिकाल

हिन्दी साहित्य का प्रथम काल यानि आदिकाल, वीरगाथाकाल से भी जाना जाता है क्योंकि हिन्दी का आदि काव्य वीरगाथाओं तथा धार्मिक उपदेशों के रूप में लिखा गया है जिसमें वीरगाथाकाल का अक्षर–अक्षर प्रेमाश्रुओं से आप्लावित तथा शौर्य के रक्त से रंजित है। इस काव्य में नारी के वीरांगना एवम् कामिनी दोनों रूपों के दर्शन होते है, किन्तु उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व की छाया कहीं दिखाई नहीं देती।

वीरगाथाकाल की प्रसिद्ध काव्यकृतियाँ 'पृथ्वीराजरासों', 'बीसलदेवरासो', 'हम्मीर रासो' आदि में वीर रस का सुंदर सामंजस्य देखने को मिलता है। इस काल के कवियों ने नारी के रूपसौंदर्य का तथा उनके गुण–शील का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है। साथ–साथ नायिकाओं के रूपाकर्षण, पातिवृत्य तथा उनके सती – स्वरूप का भी प्रभावशाली वर्णन देखने को मिलता है।

अलबेरूनी इस संबंध में लिखता है – ''उन्हें (हिन्दुओं को) इस बात की इच्छा नहीं होती कि जो वस्तु एक बार भ्रष्ट हो गई है उसे शुद्ध करके फिर ले लें।''[9] उस समय के रूढ़िग्रस्त धर्म के समान समाज भी रूढ़िगत हो चुका था। उस समय सामंती वीरता और वंशकुलीनता का बोलबाला था। राजपूत जाति की एक उल्लेखनीय विशेषता थी, वीरता और आत्मोसर्ग। राजपूत नारियाँ भी इस दिशा में किसी से पीछे नहीं रही, जौहर उनके आत्म–बलिदान और शौर्य का प्रतीक हैं।

आदिकाल के साहित्य में नारी के प्राकृत श्रृंगार से लेकर उसके मानसिक सौंदर्य तक पहुंचने की प्रवृत्ति प्रबल वेग से उभरी। युद्धों का मूल कारण नारी को कल्पित कर लिया गया। अतः श्रृंगार रस का भी इस साहित्य में जमकर वर्णन मिलता है। रासो ग्रंथों में चर्चित नर–नारी प्रेम विलास या वासना से ऊपर नहीं उठ सका है। वीररस की दीप्ति के लिए लिखे गये वीरता के पद भी वासनात्मक प्रवृत्ति को उत्तेजित करने के हेतु आए हैं। युद्धों का एकमात्र कारण नारी–लिप्सा है। उक्त ग्रंथों में निरूपित युद्धों के मूल में उदात्त प्रेम भावना या राष्ट्रीयता का सहज उल्लास नहीं हैं।

सामंतवादी युग में नारी की स्थिति अच्छी नहीं थी। रासो काव्यों की नायिकाओं के जीवन भी नारी दुर्दशा की कहानी ही कहते हैं। इतना ही नहीं इस काल का नारी सौंदर्य वर्णन भी स्वस्थ मनोवृत्ति का परिचायक नहीं हैं। तत्कालीन राजदरबारों में रहने वाले कवि नारी के नखशिख वर्णन में अत्यंत रूचि लेते थे और वह भी अधिकांश में स्थूल ही होता था। प्रेम एवम् सौंदर्य के कुशल चितेरे विधापति भी युगधर्म से इतने बंधे थे कि उन्होंने रूप–चित्रण में नखशिख वर्णन की परिपाटी का त्याग नहीं किया। विधापति का विरह

[9] हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ. शिवकुमार शर्मा, पृ. 37

वर्णन प्रेमिका के हृदय की तस्वीर है उसमें वेदना है, व्याकुलता है, प्रियतम के प्रति तल्लीनता है, कोरी हाय नहीं हैं।

खुसरों के काव्यों में भी नारी के आदर्श रूप को अभिव्यक्ति नहीं मिली है। जबकि 'आल्हखण्ड' जो हिन्दी का सुप्रसिद्ध वीरगीत है। उसमें स्त्रियों में विलासिता, भय और श्रृंगार–प्रियता कहीं नहीं दिखायी पडती। इसके विपरीत वे अत्यन्त बुद्धिमत्ती, कार्य–कुशल व साहसी दिखलायी गई हैं।

इस प्रकारक उपर्युक्त वर्णन से वीरगाथाकालीन नारी की स्थिति का वास्तविक बोध होता है उस समय उनकी स्थिति इतनी दयनीय थी कि तत्कालीन मान्यता के अनुसार न तो वह अपने पति को युद्ध में जाने से रोक सकती थीं और न उसके वीरगती प्राप्त होने पर अपनी सामाजिक स्थिति सुरक्षित रख पाती थीं। युद्धगामी वीर पति के ऐश्वर्य और पत्नी के रूप में अपने ऐश्वर्य (स्वरूप) को बनाये रखने के लिए उसे विरह की ज्वालाओं के साथ– साथ जौहार की ज्वाला में भी जलना पड़ता था। हिन्दी साहित्य के आदि युग के अंतर्गत नारी को हेय एवम् तुच्छ ही माना गया है तथा नारी प्रेरक शक्ति का और भोग–विलास की वस्तु ही अधिक रही हैं।

भक्तिकाल

आचार्य शुक्ल ने पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल की संज्ञा से भी अभिहित किया है जो कि प्रस्तुत काल की केवल एक ही प्रवृत्ति को ध्वनित करता हैं। जब कि सच यह है कि इस काल में भक्ति की धारा के साथ–साथ काव्य की अन्य अनेक परंपराएँ भी पर्याप्त सक्रिय रही हैं। शुक्लजी ने ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी, कृष्णभक्ति तथा रामभक्ति की धाराओं का उल्लेख किया हैं। भक्ति की धारा के अतिरिक्त मैथिली गीति परंपरा, ऐतिहासिक रास काव्य परंपरा, चरित्र काव्य परंपरा, ऐतिहासिक मुक्तक परंपरा, शास्त्रीय मुक्तक परंपरा,

रोमांटिक कथाकाव्य परंपरा और स्वच्छंद प्रेमकाव्य परंपरा की वेगवती काव्यधाराएँ मध्यकालीन साहित्य को उर्वर बनाती रही हैं।

संतों ने नारी के प्रति दो प्रकार की धारणा एवं दृष्टिकोण प्रकट किया हैं। एक दृष्टिकोण के अनुसार तो नारी माया की प्रतीक होने के कारण महाठगिनी कही गई हैं। नारी के कामिनी रूप को बड़ा घातक तथा पतन की ओर ले जाने वाला कहा हैं, जबकि यह भी एक तथ्य हैं कि अधिकांश संत गृहस्थ ही थे। कबीर ने कहा हैं–

"नारी की झाईं परत अन्धा होत भुजंग।

कबिरा तिन की कौन गति, नित नारी के संग।।"[10]

परंतु कबीर ने ही पतिव्रता स्त्री की प्रशंसा भी की है वे कहते हैं–

"पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरूप।

पतिव्रता के रूप पर वारों कोटि सरूप ।।"[11]

पतिव्रता का एकनिष्ठ, सच्चा पति प्रेम तथा सेवा एवं त्याग संतों को बुरा नहीं लगता। अतः सदाचारिणी नारी को परम महत्व प्रदान किया गया हैं।

सगुण

सूफी काव्यों की यह बड़ी विशेषता है कि उनमें प्रेम का प्रमुख स्थान नारी पात्र को ठहराया गया है। वह परमात्मा का प्रतीक है। नारी एक ऐसा नूर है जिसके बिना विश्व सूना हैं। परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में "सूफी कवियों ने नारी को यहाँ अपनी प्रेम साधना

[10] हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. जयनारायण वर्मा, पृ.67
[11] हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. जयनारायण वर्मा, पृ.67

के साध्य रूप में स्वीकार किया है, जिसके कारण वह इनके किसी प्रेमी के लौकिक जीवन की निरी भोग्य वस्तु मात्र नहीं रह जाती। वह उस प्रकार की साधन सामग्री कभी भी नहीं कहला सकती जिसमें बौद्ध सहजयानियों ने मुद्रा नाम देकर सहज साधना के लिए अपनाया था। वह उन साधकों की दृष्टि में स्वयं एक सिद्धि बनकर आती है और इसी कारण इन प्रेमाख्यानों में उसे प्रायः अलौकिक गुणों से युक्त भी बतलाया जाता हैं।"[12] भक्तिधारा में से विशेषतः रामभक्तिधारा ने तत्कालीन समाज को विशेष रूप से प्रभावित किया था। तुलसीदासजी सगुण भक्तिधारा की काव्यमणिमाला के सुमेरू हैं। नारी के विषय में एक युगकवि होने के नाते वे इतना ऊंचा नहीं उठ सके हैं जितना कि अपेक्षित था। नारी संबंधी हीनोक्तियों की संस्कृत साहित्य की विशाल परंपरा उनके सामने थी और उन्होंने उसका उपयोग भी किया। चाहे राम हों या भरत, सीता हो या अनुसूया, शूर्पणखा हो या मंदोदरी, समुद्र हो या रावण अथवा कवि स्वयं हो या कोई अन्य पात्र, रामायण में जिस किसी माध्यम से नारी के विषय में अभिव्यक्ति किये गये कटु विचारों के पीछे मातृ–सत्ता–युग की समाप्ति के पश्चात् क्रमशः स्वार्थी पुरूष द्वारा नारी के अधःपतन तथा उसके दमघोंटू शोषण का इतिहास सन्निहित हैं। मध्ययुगीन नारी इस प्रकार आत्मविश्वास से वंचित और हीनता ग्रंथियों से युक्त हो गई थी कि वह स्वयं अपनी भर्त्सना के लिए संकोच नहीं करती।

इस प्रकार भक्तिकाल के कवियों में नारी विषयक दृष्टिकोण में द्वैतमत ही रहा है। एक ओर उन्होंने उसे मुक्ति–मार्ग की बाधा मानकर उसकी उपेक्षा की है तो दूसरी ओर सति सीता व पार्वती की वंदना भी की है।

[12] हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ. शिवकुमार शर्मा, पृ. 184

Shodhbodhalaya: An International Peer reviewed Multidisciplinary Journal

Volume 1 | Issue 1 | ISSN: 2584-1807 | (https://shodhbodh.com/)

रीतिकाल

रीतिकाल का साहित्य हिन्दी – साहित्य में एक नवीन प्रकारर का साहित्य है। हिन्दी साहित्य के कुछ विद्वानों ने रीतिकाल को अलंकार काल, अलंकृत काल, कला काल, श्रृंगार काल के नामों से भी अभिहित किया। यह काल कलाओं के उत्कर्ष का काल भी माना जाता है इस कारण रीतिकाल में काव्यकला का विकास तो हुआ किन्तु वह 'शिवम्' मार्ग से भटक गया क्योंकि काव्य, कलाप्रिय, विलासी मुगल बादशाहों के दरबारों में ही कैद हो गया। संघर्ष के अभाव में एवम् अपने बल–पौरूष के घमण्ड में इन मुगलशासकों का मन वासना–वृत्ति में ही पूर्णतया डूबा रहता था और कवि भी अपने आश्रयदाताओं को सहयोग देते थे। इस प्रकार भक्तिकाल की उपेक्षित नारी रीतिकालीन मुक्तक काव्य में आकर्षण की केन्द्रबिंदु 'नायिका' बन गई और ये मुक्तककार नायिका भेदों, उपभेदों एवम् नखशिख वर्णन में अपनी प्रतिभा का मात्र चमत्कार ही दिखाने में लगे रहे।

मुगल शासन की निरंकुश सत्ता के सन्मुख देशी रजवाड़ों के नरेशों का तेज आहत हो चुका था। मुगल दरबार के प्रचुर विलास का अनुसरण करना ही उनके जीवन का उद्देश्य बन गया था। मानो यह एक मनोवैज्ञानिक रूप से क्षतिपूर्ति थी। राज्याश्रित कवि नारी के कुच–कटाक्ष के महीन से महीन विलासात्मक, रंगीले और भड़कीले चित्र उतारकर अपने स्वामी के गहरे मानसिक विषाद को दर करने में प्रयत्नशील थे। उनके सामने नारी का एक ही रूप था और वह था विलासिनी प्रेमिका का। नारी उनके लिए एकमात्र भोग–विलास का उपकरण मात्र थी। नारी के बाह्य रूप–रंग को ही महत्व दिया जाता रहा। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में "रीति काव्य आध्यात्मिक तो है ही नहीं, परंतु वस्तु रूप में भौतिक भी नहीं– अर्थात् न उसमें आत्मा की अतल जिज्ञासा है न प्रवृत्ति की दृढ़ कठोरता। वह तो जैसे जीवन का विराम स्थल हैं। जहाँ सभी प्रकार की दौड़–धूप से श्रान्त होकर

मानव नारी की मधुर अंचल–छाया में बैठकर अपने दुःखों और पराभवों को भूल जाता है। उसका आधारफलक इतना सीमित है कि जीवन की अनेकरूपता के लिए उसमें स्थान ही नहीं हैं उस पर अंकित जीवन–चित्र भी स्वाभावतः एकांगी हैं।"[13] एक एकांगी दृष्टिकोण के कारण यह नारी–जीवन के सामाजिक महत्व, उसके श्रद्धामय रूप और उसकी मातृ–शक्ति को देख नहीं सका। वह केवल तनद्युति का अनुरागी था।

रीतिबद्ध कवियों के द्वारा तो नारी के सामाजिक जीवन के महत्व का उद्घाटन हो नहीं पाया, रीतिमुक्त कवियों में भी उसका यह महत्व व्यक्त नहीं हो पाया। सभी बंधी– बंधाई लकीर पर उसके अंग–प्रत्यंग की शोभा, हावभाव और विलास चेष्टाओं का वर्णन करते रहे। इस संबंध में आचार्य हजारीप्रसाद के शब्दों में "यहाँ नारी कोई व्यक्ति या समाज के संगठन की इकाई नहीं है। बल्कि सब प्रकार की विशेषताओं के बंधन से यथासम्भव मुक्त विलास का एक उपकरण मात्र हैं।"[14]

देव ने कहा हैं –

"कौन गनै पुर बन नगर कामिनी एकै रीति।
देखत हरै विवेक को चित्त हरै करि प्रीति।।"

इससे इतना स्पष्ट है कि नारी की विशेषता इनकी दृष्टि में कुछ नहीं हैं, यह केवल पुरूषों के आकर्षण का केन्द्र है। नारी जीवन के प्रति रीति कवि के इस संकुचित दृष्टिकोण का दायित्व एक तो उस समय के वातावरण पर है और दूसरा है कामशास्त्रीय ग्रंथों के प्रभाव पर। उसके रूप–यौवन को बुभुक्षित दृष्टि से देखा है। इसी कारण वह

[13]हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ. शिवकुमार शर्मा, पृ.39
[14]वही, पृ.45

Shodhbodhalaya: An International Peer reviewed Multidisciplinary Journal

Volume 1 | Issue 1 | ISSN: 2584-1807 | (https://shodhbodh.com/)

उनके लिए प्रेम भी श्रेय न बन सकी इस वासना एवम् विलास की विभावरी में नारी के उदात्त रूप के दर्शन हो न सके।

आधुनिक काल

आधुनिक काल संवत् 1900 से लेकर अब तक के संपूर्ण काल को कहा जाता है। इस काल के आरंभ में देश की स्थिति करवट बदल रही थी। ईस्ट इण्डिया कंपनी का शासन समाप्त हो रहा था और भारत की शासन व्यवस्था इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट द्वारा होने लगी थी। अंग्रेजी शासन से देश की राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवम् सामाजिक परिस्थितियों में भी पर्याप्त अंतर आ गया था। देश की बढ़ती हुयी गरीबी एवं दुर्दशा से भारतीय जनता भीतर ही भीतर असंतोष की आग में सुलगने लगी थी और वह स्वयं को अंग्रेजी शासन सत्ता से उत्पीड़ित अनुभव करने लगी। सन् 1957 के स्वतंत्रता संग्राम के विद्रोह भरे वातावरण में छोटे–छोटे राज्यों की सत्ता भी क्षीण हो गयी थी। अतः कवियों को जनता के बीच आश्रय खोजना भी आवश्यक हो गया था और फलस्वरूप ये कवि केवल एक आश्रयदाता की मनभाती बात कहने के स्थान पर जन–मानस की रूचि का भी ध्यान रखने लगे थे।

इस प्रकार पहली बार इन कवियों ने देवी – देवता और राजा–महाराजा को छोड़कर सामान्य मानव के हृदय को टटोला जो आँसुओं से छलक रहा था।

युगों से अपेक्षिता, निन्दा, निपट, भोग्या मानी जाने वाली करूणा, त्याग एवम् समर्पण की प्रतिमूर्ति नारी को भी प्रथम बार इस सुधारवादी सुविहार में कवियों की संवेदनशीलता का संस्पर्श पाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। राजाराममोहनराय और स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज जैसी संस्थाओं ने नारी – विषयक दृष्टिकोण में उदारता लाने में

पर्याप्त योगदान दिया। समाज की अर्द्धांगिनी नारी को पुरूष से ऊँचा तथा उसकी समता की उद्दघोषणा करना प्रारंभ कर दिया था।

ऐसी स्थिति में नारी–शिक्षा महत्व, पर्दा – विरोध, विधवा उद्धार, बाल–विवाह व अनमेल विवाह विरोध आदि भी तत्कालीन काव्य के नूतन एवम् महत्वपूर्ण विषय बने। इस प्रकार आधुनिक काल में अनेकों दिशाओं तथा कालों का प्रस्फुटन हुआ।

भारतेन्दु युग

इस काल के प्रमुख कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं, जिन्होंने बाल–विवाह का विरोध तथा स्त्री–शिक्षा का पूर्ण समर्थन करके समाज में नारी की स्थिति के लिए एक नयी राह प्रदान की। इस युग के अन्य कवियों ने प्रेम–सौंदर्य का चित्रण किया तथा विधवा दुर्दशा के प्रति विरोध–भावना जगाई और पर्दा प्रथा का भी खण्डन किया।

हिंदी साहित्य में नवीन युग की चेतना का बीज भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग में पाया जाता है। भारत में इस समय समाज की दशा अत्यंत शोचनीय थी। छुआछुत, बालविवाह प्रथा, सती प्रथा, विधवा विवाह, बहिष्कार इत्यादि के कारण समाज की प्रगति अवरुद्ध हो गई थी। युग के विचारक व्यापक दृष्टिकोण से समाज सुधार की आवश्यकता अनुभव करने लगे। महात्मा गांधी, श्रीमती बेझंट, ईश्वरचंद्र विद्यासागर आदि समाज सुधारकों ने भारतीय नारी की पतनोन्मुख दशा को सुधारने का प्रबल समर्थन किया।

हिंदी साहित्य में आधुनिक युग का सूत्रपात भारतेन्दु युग से हुआ है। यह वैचारिक संघर्ष का युग है। समाज, राजनीति, संस्कृति, सभी क्षेत्रों में नये विचारों का आगमन इस देश में हुआ। हिंदी में बालविवाह, विधवा–विवाह आदि पर अनेक कविताएँ लिखकर कवियों ने नारी की असहाय अवस्था नष्ट करने का आवाहन किया। आधुनिक काल के इस प्रथम

उत्थान में अन्य सहयोगियों के साथ भारतेन्दु जी ने सामाजिक कुरीतियों में स्त्री विषय को लेकर एक नया दृष्टिकोण अपनाया।

भारतेन्दु भारतीय समाज में स्त्रियों की दयनीय दशा से बड़े चिंतित थे। उन्होंने लिखा हैं ''जिस कुरीति के कारण मनमाना पुरूष धर्मपूर्वक न पाकर लाखों स्त्रियाँ कुमार्गगामिनी हो जाती हैं, लाखों विवाह होने पर भी जन्मभर सुख नहीं भोग पाती, लाखों बाल हत्याएँ होती है, उस पापमयी परम नृशंस रीतियों को इन लोगों ने उठा देने में शक्यभर परिश्रम किया।'' इस तरह इस काल के साहित्यकारों ने कवियों के श्रृंगाररस की कविता में जो विलास की वस्तु समझी गई थी उस नारी की गिरी हुई दशा के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है। भारतेन्दु जी की "बालबोधिनी" (सन् 1984) नामक पत्रिका का प्रकाशन स्त्री–शिक्षा प्रचार के उद्देश्य से छपता था।

भारतेन्दु युग में एक धारा वीरकाव्य की भी है, जिसमें नारी का बड़ा ही उदात्त चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस साहित्य की नारी देश प्रेमिका तथा वीरनारी है। वह पुरूष को राष्ट्रप्रेम की प्रेरणा देती है। कायर की पत्नी अथवा कायर की माँ बनने की अपेक्षा मृत्यु को गौरवपूर्ण समझती हैं।

भारतेन्दु काल के साहित्यकारों ने रीति और श्रृंगार के संकुचित घेरे से नारी को मुक्त कर उसके उन्नति के अनेक प्रयासों का निर्देशन किया है। इस युग में नर का नारी पर कठोर शासन था। शिक्षा के अभाव में नारी असहाय बंदिनी थी। युगपुरूष भारतेन्दु जी ने स्त्री के प्रति देखने का पुरूष का दृष्टिकोण बदलने का प्रयास किया। स्त्री के अनेक प्रश्नों को वाणी इस युग के कवियों ने बाल विवाह, अनमेल विवाह, बाल विधवा के पुनर्विवाह आदि सामाजिक समस्याओं पर अपनी दृष्टि केंद्रित की।

Shodhbodhalaya: An International Peer reviewed Multidisciplinary Journal

Volume 1 | Issue 1 | ISSN: 2584-1807 | (https://shodhbodh.com/)

भारतेन्दु जी पक्के समाज सुधारक थे। उन्होंने अपने साहित्य में नारी की प्रगति के प्रयत्नों का समर्थन तथा सामाजिक कुरीतियों का विरोध कर प्रकारांतर से नारी स्वतंत्रता एवं नरनारी की समानता का प्रतिपादन किया। इस युग के साहित्यकारों ने नारी के प्रति आदर एवं समानता की भावना बढ़ा दी। सच्चे अर्थो में यह काल नव जागरण काल सिद्ध हुआ।

निष्कर्ष

भारतीय साहित्य में नारी की छवि समय के साथ बदलती रही है, जो समाज में उसकी वास्तविक स्थिति का प्रतिबिंब है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक, नारी की भूमिका और महत्व को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा गया हैकृकभी देवी के रूप में, तो कभी एक शोषित अस्तित्व के रूप में। लेकिन आधुनिक युग में नारी ने अपनी अस्मिता को पहचानते हुए अपनी आवाज बुलंद की है। साहित्य ने इस बदलाव को न केवल दर्ज किया, बल्कि इसे गति भी दी। आज नारी केवल साहित्य की प्रेरणा नहीं, बल्कि उसकी सक्रिय निर्माता भी है। इस परिवर्तनशील यात्रा ने यह सिद्ध किया कि नारी केवल भावनाओं और संवेदनाओं का केंद्र नहीं, बल्कि समाज की एक सक्रिय और सशक्त इकाई भी है।

संदर्भ

- साहू, आई. (2024)। महिला कार्यक्रम के माध्यम से भारत में महिला आंदोलन (1970–80 के दशक) पर फिर से विचार करना। फिल्म, रेडियो और टेलीविजन का ऐतिहासिक जर्नल, 44(4), 734–755।

- रघु, टी. (2022)। भारतीय महिला लेखकों द्वारा लघु कथाओं में पितृसत्ता का प्रतिरोध सारा जोसेफ वोल्गा और वैदेही का एक अध्ययन (डॉक्टरेट शोध प्रबंध, कुवेम्पु विश्वविद्यालय)।
- वुइल, आर. ए. (2022)। साहित्य और लेखन की काव्यशास्त्र पर कृष्णा सोबती के विचार: आधुनिक हिंदी साहित्य में सैद्धांतिक स्थितियाँ और साहित्यिक अभ्यास (पृष्ठ 396)। डी ग्रुइटर।
- अरोड़ा, एस., और जोशी, एम.बी. (2021)। मन्नू भंडारी। भारतीय साहित्य, 65(5 (325), 10–14.
- अरोड़ा, बी. (2019)। राइटिंग जेंडर, राइटिंग नेशन: पोस्ट–इंडिपेंडेंस इंडिया में महिलाओं का उपन्यास। रूटलेज इंडिया।
- नरसिम्हन, आर. (2018)। मित्रो अंग्रेजी से परे: मित्रो मरजानी का गहन अध्ययन। भारतीय साहित्य, 61(3), 177–191।
- मणि, पी. (2016). स्त्री की इच्छा मानवीय इच्छा है: स्वतंत्रता के बाद के भारत में नारीवाद लिखती महिलाएँ। दक्षिण एशिया, अफ्रीका और मध्य पूर्व का तुलनात्मक अध्ययन, 36(1), 21–41.